
संगीत के प्रमुख (शास्त्रीय) तत एवं वितत वाद्य

डॉ० गीता शर्मा

प्रवक्ता संगीत(गायन)

आई०एन० (पी०जी०) कॉलिज, मेरठ।

लकड़ी के बने ढाँचे पर ताँबे व लोहे के तार चढ़ाकर उन पर मिज़राब, गज या उँगलियों द्वारा प्रहार करके ध्वनि की उत्पत्ति जिन वाद्यों पर होती है, वे 'तत वाद्य' कहलाते हैं। तत वाद्यों को ही 'तंत्र-वाद्य' कहा जाता है, क्योंकि इन वाद्यों में तार लगे होते हैं। तत वाद्य 'स्वर के बाजे' होते हैं। ऐसे वाद्यों को दो भागों में विभक्त किया जाता है— 1. तत वाद्य और 2. वितत वाद्य। 'तत वाद्य' वे हैं, जिनके तारों पर प्रहार उँगली या मिज़राब से करते हैं, जैसे—सितार, सरोद, तानपूरा, सुरबहार, सुरसिंगार, स्वरमंडल और रबाब। 'वितत वाद्य' वे हैं, जिनके तारों पर प्रहार गज के घर्षण से उत्पन्न होता है, जैसे— सारंगी, दिलरूबा और इसराज।¹

तत वाद्य**सितार**

आधुनिक युग का सर्वाधिक प्रसिद्ध तत वाद्य 'सितार' मध्ययुग से विकसित होता हुआ अपने वर्तमान स्वरूप तक पहुँचा है, सितार के वर्तमान स्वरूप का विकास 13वीं या 14वीं शताब्दी से आरम्भ होता है। 13वीं शताब्दी तक भारत में एक तन्त्री या किन्नरी वीणा का सर्वाधिक प्रचार था। किन्नरी वीणा से रुद्र वीणा का विकास 13वीं सदी में हो गया था। शारंगदेव ने त्रितन्त्री का वर्णन किया है। इसमें 5 तन्त्रियाँ तथा 16 पर्दे थे। त्रितन्त्री का विकास दो रूपों में हुआ। 1. तम्बूरा 2. सितार—सितार का तुम्बा कददू से बनाया जाता है, सितार में 7 मुख्य तारें होती हैं। पहले को बाज का तार कहा जाता है, इसकी तार जोड़े की होती है, अन्तिम दो तारों को चिंकारी कहते हैं, इस पर झाला बनता है। सितार का तार क्रमशः मन्द्र म, मन्द्र सा, मन्द्र प (अति मन्द्र सा) मन्द्र प मंद्र सा तथा तार सा पर मिलाए जाते हैं। सितार में 12 से लेकर 20 तक तरबें होती हैं, इसके अतिरिक्त 18 से 28 तक पर्दे होते हैं। सितार बजाने के लिए दायें हाथ में मिज़राब पहना जाता है। सितार के आकार वादन के विकास में उ० इमदाद खाँ ने योगदान दिया, उन्होंने ही सितार में तरब लगाई, इसके साथ-साथ, मोड़, घसीट, झाला का समावेश करके उसे और सुन्दर बनाया। इसमें गायकी अंग का समावेश ही उ० इमदाद खाँ ने किया। वर्तमान समय में पं० रवि शंकर जी ने सितार में अति मंद्र सप्तक का एक तार और लगा दिया तथा क्रतन अंग का समाविष्ट किया।

सरोद

सरोद हिन्दुस्तानी संगीत—सभाओं की सबसे नफीस वाणी है। आजकल यह लगभग सारी दुनिया में जाना जाता है। सरोद का अर्थ किसी प्रकार की वीणा से है अथवा वह कोई धुन है। सरोद मध्य एशिया के इसी वाद्य से विकसित हुआ। रबाब की तरह यह भी लकड़ी का बना होता है और कटिमय होता है, परन्तु यह अपेक्षाकृत उथला होता है। दूसरा अन्तर यह है कि दंड पर लकड़ी की बजाए धातु की पत्तिया होती हैं। तन्त्रियाँ चार मुख्य, चार सहायक, दो आधार के लिए और लगभग एक दर्जन अनुगूँज (तरब) के लिए होती हैं। ये सभी धातु की बनी होती हैं। सरोद भी रबाब की तरह लकड़ी के एक छोटे—से टुकड़े 'जीवा' से बजाया जाता है। रबाब के अनुकरण पर बना वाद्य (सरोद) भारतीय तंत्रकारी में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।²

सरोद में मुख्य चार तार होते हैं और 12 तार तरबों के होते हैं। ये तरबें मुख्य तारों के नीचे से लगी रहती हैं और सरोद की झंकार को बढ़ाने में सहायक होती हैं। वर्तमान समय में इसे प्रचार में लाने का श्रेय हैदर अली खाँ को दिया जाता है, जो इस साज़ को काबुल से लाए।

'सरोद' शब्द की उत्पत्ति अरबी शब्द शहरूद से हुई है, जिसका अर्थ है 'संगीत'। अरब का शहरूद और अफगानिस्तान का रबाब मिलकर ही भारत का सरोद बना। इसमें सारंगी तथा वीणा, दोनों के गुण विद्यमान हैं। यह गतकारी के लिए उत्तम वाद्य है। इसकी ध्वनि बड़ी मधुर होती है।

तानपूरा

लकड़ी के बने इस वाद्य के नीचे कददू का तूँबा लगा होता है। इसमें चार तार लगे होते हैं, जिन्हें क्रमशः पहले तार को मन्द्र सप्तक के पंचम, दूसरे व तीसरे को मध्य-षड्ज और चौथे को मन्द्र-षड्ज में मिलाते हैं। ध्यान से सुनने पर इन चार तारों के छिड़ने पर जो ध्वनि की उत्पत्ति होती है, उसमें से सातों स्वरों की ध्वनि सुनाई देती है।

प्रचलित 'तानपूरा' शब्द को 'तंबूरा' शब्द का अपभ्रष्ट रूप कहा जा सकता है। कहते हैं, तुम्बुरु नामक गंधर्व द्वारा इस वाद्य का आविष्कार किया गया था, इसीलिए उसी के नाम पर इसे 'ताम्बूरम् या तंबोरा' कहा गया। उत्तरी तथा दक्षिणी, दोनों संगीत-पद्धतियों में तम्बूरे का प्रयोग गायन, वादन तथा नृत्य तीनों के साथ स्वर देने के लिए किया जाता है। इस वाद्य का उद्भव कब और कैसे हुआ, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। भारत के प्राचीन तथा मध्ययुगीन चित्रों तथा शिल्पों में कहीं भी इस वाद्य का चित्र प्राप्त नहीं होता। प्राचीन काल में गायक के साथ स्वर देने के लिए एकतंत्री एवं द्वितंत्री जैसी वीणाओं के तंत्रियों को निरन्तर छेड़ा जाता था, ताकि गायक का ध्यान आरम्भ-स्वर पर सदा केन्द्रित रहे। प्रतीत होता है कि इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए संवाद-सिद्धान्त के आधार पर चार तन्त्रियों वाला तम्बूरा प्रचार में आया है।¹

सुरबहार

यह आकार-प्रकार में सितार के समान होता है। इसमें आठ तार होते हैं, जो म, स, प (मन्द्र), स(मन्द्र), प, स, स, स(तार) में मिलाए जाते हैं। इसके तार कुछ मोटे होते हैं। मीडियुक्त आलाप एवं गमक निकालने के लिए इसमें काफी गुंजाइश होती है। सितार के समान यह भी कोण या मिजराब से बजाया जाता है। बजाने में सितार की भांति दोनों हाथों का उपयोग होता है। सितार की सारिकाएँ विशिष्ट स्वरावली स्थापित करने के लिए प्रायः सरकाई जा सकती हैं, परन्तु सुरबहार की सारिकाएँ अचल अर्थात् स्थायी रूप से बँधी रहती हैं।

रामपुर के वजीर खाँ के दादा उमराव खाँ (जो प्रसिद्ध वीणा-वादक थे) के शिष्य गुलाम मुहम्मद को इसका आविष्कारक होने का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने सितार का आकार बड़ा करके और उसमें चिकारियों की योजना कर 'सुरबहार' का निर्माण किया। उनके पुत्र सज्जाद मुहम्मद भी इसके अच्छे कलाकार थे। मैहर के उस्ताद अलाउद्दीन खाँ अनेक वाद्यों के साथ इस वाद्य को भी सफलता से बजाते थे। उनकी पुत्री अन्नपूर्णा देवी द्वारा यह पम्परा आज भी सुरक्षित है।

सुरसिंगार

यह वाद्य रबाब के आकार का, किन्तु कुछ लम्बा और चौड़ा है। इसकी तंत्रियों की संख्या वही है, जो रबाब में होती है। रबाब की भांति यह भी सारिका-विहीन या परदों से रहित वाद्य है। इसे यदि रबाब का जवाब कहा जाए तो आपत्ति नहीं। इसके सिरे पर, जहाँ स्वरों के लिए खूंटिया लगी रहती हैं, नीचे तुम्बा लगा रहता है जिससे साज की गूँज बढ़ने में सहायता मिलती है। रबाब के विरुद्ध इसकी तंत्रियाँ धातु की बनी होती हैं और तारों के नीचे सरोद जैसी धातु की पट्टी लगी होती है, जिससे स्वरों पर उँगलियाँ सरलता से खिसकती हैं। इस वाद्य में आठ तार होते हैं, जिन्हें क्रमशः स, स, प, स, ग, स, रे और प में मिलाया जाता है। अन्तिम दो तारों को राग के अनुसार बदल दिया जाता है। इसमें चिकारियाँ लगी होने के कारण झाले का काम भली-भाँति किया जा सकता है। यह वाद्य रबाब एवं सरोद के बीच वाली स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है।⁴

एक अन्य मत के अनुसार, रामपुर के भूतपूर्व नवाब कल्बेअली खाँ ने इस वाद्य का आविष्कार किया था। एक मत यह भी है कि तानसेन की परम्परा के जफर खाँ नामक वादक ने पिछली शताब्दी के आरम्भ में रबाब के आधार पर इसका आविष्कार किया।⁵ जफर खाँ सर्वप्रथम लखनऊ-दरबार में रबाब-वादक रहे, परन्तु बाद में स्थायी रूप से बनारस बस गए। ये शुरू में रबाब बजाते थे, परन्तु एक बार इन्होंने देखा कि जानवर की खाल से मढ़े जाने के कारण तथा चरबी की ताँतें लगी होने के कारण बरसात के मौसम में यह वाद्य एकदम मद्धा पड़ गया। इसलिए उन्होंने लोहे व पीतल के तार तथा नीचे की ओर धातु की पट्टी जोड़कर इस नए साज का निर्माण किया।

जफर खाँ के उत्तराधिकारी बहादुर हुसैन ने अपने मामा प्यार खाँ से सुरसिंगार की शिक्षा प्राप्त की तथा इस साज को लोकप्रिय बना दिया। रामपुर के सर्वश्रेष्ठ बीन-वादक उस्ताद वजीर खाँ, उनके भाई हैदर अली आदि इस साज के उत्कृष्ट वादक रहे हैं।

स्वरमंडल

यह एक प्राचीन वाद्य है, परन्तु पिछले 50 वर्षों से अधिक प्रचार में आया है। इसका सोलो वादन बहुत कम पाया जाता है। कुछ गायक अवश्य अपने गायन के साथ सुर भरने के लिए इसको स्वयं बजाते रहते हैं। तम्बूरे के माध्यम से गायक को केवल 'प, स, स, स' इन चार ही स्वरों की उपलब्धि होती है, परन्तु स्वरमंडल से उन्हें विभिन्न रागों की स्वरावलियाँ तक मिल जाती हैं। यह अरब और मिस्र देश के 'कानून' नामक वाद्य से मिलता-जुलता है। यह लगभग 3 फुट लम्बा, 1.5 फुट चौड़ा और 7 इंच ऊँचा होता है। इसमें 21 से लेकर 19 तक तंत्रियाँ होती हैं, जिनको बजाने के लिए उँगली, नाखून या मिजराब का प्रयोग किया जाता है।

कुछ लोग इसे 'नारदी' या 'महती' वीणा का रूपान्तर मानते हैं। महती वीणा में 21 तंत्रियाँ हुआ करती थीं। 'संगीत-रत्नाकर' के अनुसार, ऐसी वीणा का नाम 'मत्तकोकिला' था। उसके टीकाकार कल्लिनाथ के अनुसार, इसी को लोकभाषा में 'स्वरमंडल' कहा जाता था। इसकी उत्पत्ति प्राचीन शततंत्री वीणा से भी मानी जाती है। इसका एक रूप आज कश्मीर के 'सन्तूर' में मिलता है। यह शब्द फारसी भाषा का है और इसका अर्थ है— 'सौ तार'। शततंत्री वीणा प्राचीन वैदिक वाद्य है, जिसका प्रचार सूत्रकार कात्यायन के भी पहले से था। वैसे, इसे 'कात्यायनी वीणा' भी कहा जा सकता है। आधुनिक सन्तूर में सौ तार होते हैं और प्रत्येक घुड़च पर चार तार लगे रहते हैं। 4-4 तार एक ही स्वर में मिलाए जाते हैं। 4-4 तार एक ही स्वर में मिलाए जाते हैं। लकड़ी के दो मिज़राबों से इसे बजाया जाता है। जोड़, झाला, लयकारी आदि के साथ तरबों को झंकार इसकी खासियत है।⁶

स्वरमंडल के वादकों में (स्व0) स्वामी डी0आर0 पार्वतीकर का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। उन्होंने इस साज़ में कुछ परिवर्तन किए। चार स्वरमंडल एक साथ बजाने की एक अद्भूत शैली का आविष्कार भी उन्होंने किया। इसी का जो दूसरा रूप सन्तूर नाम से प्रसिद्ध है, उसके वादक के रूप में कश्मीर के पं0 शिव कुमार शर्मा विख्यात हैं।

रबाब

'रबाब' शब्द अरबी है। आरम्भ में इस शब्द का प्रयोग हर किसी वाद्य के लिए किया जाता रहा, परन्तु बाद में यह विशिष्ट वाद्य के लिए किया जाता रहा, परन्तु बाद में यह विशिष्ट वाद्य का बोधक हुआ। इसके वर्तमान रूप के विकास में मध्य एशिया के 'रिबेक' नामक वाद्य का कुछ योगदान माना जाता है। यह वाद्य एक लम्बे तथा खोखले डोंड से बनता है। इसके नीचे की ओर लकड़ी का एक तुम्बा होता है, जो डोंड का ही एक हिस्सा होता है। तुम्बे वाला भाग कुछ चौड़ा आर ऊपर से चपटा होता है तथा दूसरे छोर की ओर, जहाँ खूंटियाँ लगी रहती हैं, सिकुड़ता हुआ चला जाता है। तुम्बे का ऊपरी हिस्सा भेड़ की खाल से मढ़ा रहता है, जिसको 'मौद' कहते हैं। इसके ऊपर बीच में लकड़ी की घोड़ी या घुड़च रखी रहती है, जिसे 'घुड़च-घनी' कहते हैं। दूसरी ओर जो घुड़च होती है, उसे 'तार-घनी' कहते हैं। इन्हीं दोनों के सहारे रबाब के तार सम्हले रहते हैं। तार छह होते हैं, जो ताँत से बने होते हैं। ये क्रमशः मध्य प (मुदारा), मध्य री (मुदारा), मध्य स (मुदारा), मन्द्र प (उदारा), मन्द्र म (उदारा) और मन्द्र या उदारा स में मिलाए जाते हैं। इनको क्रमशः जीर, म्यान, सुर, मन्द्र, घोर और खरज कहते हैं। इनको बजाने के लिए प्रायः लकड़ी या हस्तिदन्त का तिकोना टुकड़ा काम में लाया जाता है, जिसको 'जवा' या 'जरब' कहते हैं। दाहिने हाथ के अँगूठे और पहली तथा दूसरी उँगली से जवे को पकड़कर तारों पर प्रहार किया जाता है और बाएँ हाथ की उँगलियों से ताँत को डोंड पर दबाकर स्वर निकाले जाते हैं।⁷

रबाब का बाज मध्य लय की आलापचारी का है, जिसमें वीणा के समान मीड़ का विलम्बित अंग प्रायः नहीं पाया जाता। इसकी वादन-शैली में गमक, जोड़, छूट, छपक तथा तार-परन जैसे अलंकार बजाए जाते हैं। तार-परन के अन्तर्गत तबले के आघातों की ध्वनि वाद्य पर निकाली जाती है।

इस वाद्य का विशेष प्रचार अफगानिस्तान तथा पंजाब की ओर विशेष रूप से दिखाई देता है। पंजाब में सिख-बानियों की संगति के लिए इसी वाद्यका प्रयोग किया जाता रहा। गुरु नानक तथा उनकी शिष्य-परम्परा में इस साज को विशेष पसन्द किया गया था। तानसेन को यह वाद्य प्रिय था और उनके पुत्रवंश में यह बराबर प्रचलित रहा। यह घराना 'सेनिया' के नाम से प्रसिद्ध है। इस परम्परा में गुलाम खाँ के तीन पुत्र-जफर खाँ, प्यार खाँ और बासत खाँ थे, जिन्होंने इस वाद्य के प्रसार में काफी योगदान दिया। बहादुर सिंह, हैदर अली तथा वजीर खाँ (रामपुर) इस वाद्य के श्रेष्ठ वादक रहे हैं।

वितत वाद्यः

वितत वाद्यों के तारों पर प्रहार गज़ (लकड़ी की छड़ी पर लगे घोड़े के बालों) से घिसकर करते ह। ये वाद्य गायन-शैलियों का पूर्ण अनुकरण करते हैं। सारंगी, दिलरूबा और इसराज जैसे वाद्य 'वितत' श्रेणी के ही वाद्य हैं, जिनका विवरण यहाँ दिया जा रहा है—

सारंगी :

संगीत-सभाओं में प्रयुक्त सारंगी वाद्य लकड़ी के एक ही टुकड़े का बना होता है और लगभग साठ सेंटीमीटर लम्बा होता है। खोखला वाद्य चौड़ा किन्तु नीचे की ओर सँकरा होता है और यह चपटे दंड के रूप में बढ़ जाता है। निचलाभाग खाल से मढ़ा होता है और स्वर-पेटी की तरह कार्य करता है, जबकि ऊपरी भाग लकड़ी से ढका हुआ रहता है। मुख्य तंत्रियाँ गिनती में चार होती ह और आम तौर पर ताँत की बनी होती हैं, जैसा कि उत्तर भारत के वाद्ययंत्रों की विशेषता है।⁸

लोक-वाद्य के रूप में प्रचलित सारंगी और शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होने वाली सारंगी की संरचना लगभग समान होती है। उत्तर भारत में सारंगी को नर्तकियों की संगत के वाद्य के रूप में अधिक जाना जाता था और सामाजिक तौर पर सारंगीए (सारंगी-वादक कलाकार) संगीतकारों में सबसे नीचे तबके के माने जाते थे। परन्तु आज तस्वीर बिलकुल उलट है। उच्च संगीत सभाओं में सारंगी की बहुत माँग है और इसके वादकों ने राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सम्मान प्राप्त किया है।

गायन की संगति के लिए यह साज सबसे अधिक उपयोगी माना जाता है। आज भी इसकी लोकप्रियता बराबर बनी हुई है। इसका विशेष प्रचार ख्याल तथा तुमरी के साथ हुआ है।⁹ यह वाद्य साल या पनस जैसी ठोस लकड़ी से बनाया जाता है। यद्यपि देखने में यह मोटा, चौड़ा, भारी और बदसूरत सा है, तथापि इसकी आवाज मधुर और मानव-कण्ठ से काफी मिलती-जुलती होती है। इसके नीचे का हिस्सा खाल से मढ़ा जाता है, जिसको 'मन्धान' कहते हैं। यह भाग कुछ चौड़ा होता है और दूसरे सिरे की तरफ छोटा होता चला जाता है। इसके मझले भाग को 'छाती' कहते हैं। सारंगी को क्रमशः 'स, प, स तथा म अथवा ग' में मिलाया जाता है। सारंगी-वादकों के अनुसार, ताँतों की मोटाई में आपसी अनुपात होता है। जोड़ी की ताँत यदि 19 हिस्से मोटी हो तो पंचम की 22 हिस्से मोटी होनी चाहिए और खरज की 18 हिस्से मोटी होनी चाहिए। इसमें नीचे की ओर 11 से लेकर 22 तक तरबें होती हैं, जिन्हें राग की प्रकृति के अनुसार मिलाया जाता है।

दिलरूबा:

यह इसराज से मिलता-जुलता वाद्य है, परन्तु आकार में कुछ बड़ा होता है। इसका ऊपर वाला भाग सितार के समान और नीचे वाला भाग सारंगी के समान चौड़ा तथा चमड़े से मढ़ा रहता है। सारंगी की भाँति दिलरूबा बाँएँ कंधे के सहारे खड़ा करके बजाया जाता है। इसमें चार तार होते हैं, जिनमें से बाईं ओर वाला पहला तार मन्द्र म का होता है और शेष तार क्रमशः मध्य स, मन्द्र प तथा मन्द्र स में मिलाए जाते हैं। पहले दो तार स्टील के और शेष दो तार ताँबे के होते हैं। मन्द्र म के तार को 'बाज का तार' कहते हैं। इसका वादन मुख्यतः इसी तार पर विभिन्न परदे दबाकर किया जाता है। परदों की संख्या 15 से 19 तक होती है। योग्य स्वर पाने के लिए इन परदों या सारिकाओं को आवश्यकतानुसार खिसकाया जा सकता है। परदों के नीचे 22 तरब के तार होते हैं, जिनसे साज की झंकार बढ़ जाती है। इन तारों की खूँटियाँ दंड के दाहिने पार्श्व में एक विशेष पट्टिका पर लगी रहती हैं। यह वाद्य गज से बजाया जाता है।¹⁰

इसराज:

यह दिलरूबा वाद्य से मिलता-जुलता वाद्य है। इसका आकार सितार से मिलता-जुलता है, परन्तु नीचे का तुंब या घट सारंगी की भाँति बकरी की खाल से मढ़ा रहता है। इसके लकड़ी वाले मुख्य भाग को 'डॉड' और निचले हिस्से को 'कुंडी' कहते हैं। इसमें स्टील तथा पीतल के चार तार होते हैं, जो क्रमशः मन्द्र म, मन्द्र स तथा मन्द्र प में मिलाए जाते हैं। बीच के दो तारों को 'जोड़ी के तार' कहते हैं। पहला अर्थात् मन्द्र म का तार 'बाज का तार' होता है, जिसे 'नायकी तार' भी कहते हैं। साज की गूँज बढ़ाने के लिए मुख्य तारों के नीचे से पन्द्रह-बीस तार लगे होते हैं, जिन्हें 'तरबें' कहते हैं। इन्हें राग के अनुसार भिन्न-भिन्न स्वरों में मिलाया जाता है। इसमें कुल 16 परदे या सारिकाएँ होती हैं, जो पीतल या लोहे की बनी होती हैं। ये सारिकाएँ अपने स्थान पर चिपकी रहती हैं। इस साज को बजाने के लिए गज का प्रयोग किया जाता है।¹¹

सारंगी को पतिष्ठित समाज में स्थान देने के लिए ही उसमें सितार के परदों को जोड़कर इसराज वाद्य का रूप दिया गया है। इस वाद्य का प्रचार बंगाल प्रदेश में अधिक है।

संदर्भ सूची

1. भारतीय संगीत –वाद्य, डॉ० लालमणि मिश्र
2. संगीत-बोध, डॉ० शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे
3. संगीत-शास्त्र, के०वासुदेव शास्त्री
4. अबुल फजल-कृत 'अकबरनामा', अनुवादक और संक्षेपक: डॉ० मथुरालाल शर्मा
5. प्राचीन भारत में संगीत, डॉ० धर्मावती श्रीवास्तव
6. संगीत रत्नाकर, पं० शागर्डदेव, (वाद्याध्याय)
7. संगीत-पारिजात, पं० अहोबल
8. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि (हिन्दी अनुवाद)
9. भारतीय संगीत का इतिहास, डॉ० शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे
10. भारतीय संगीत-सरिता, डॉ० रमा सराफ
11. भारतीय संगीत के तन्त्रीवाद्य, डॉ० प्रकाश महाडिक